पूज्य श्री लालचंदभाई का प्रवचन
श्री समयसार, गाथा १३, ता. ५-४-१९८९
भिंड, प्रवचन नंबर P ०७

Version 2

ये श्री समयसारजी परमागम शास्त्र है। समयसार नाम एक है, ना उसका स्थान दो जगह पर है। नाम तो समयसार एक है और ऐसे समयसार दो जगह पर है। एक तो यह समयसार है, शुद्धात्मा, अपना शुद्धात्मा। बहुत नय लगाना, नय लगने में, सादि भाषा मैं कहता हूँ, कि निश्चय से तो, आत्मा ये समयसार इधर है। मगर जिसने शुद्धात्मा अपने आप से, देखा नहीं है अनंतकाल से, अज्ञानी जीव ने अपना जो शुद्धात्मा जो इधर है, अंदर भगवान परमात्मा, वीतरागी प्रतिमा, चैतन्य प्रतिमा, जलहल ज्योति विराजमान है, अंदर में। ऐसे शुद्धात्मा का, अपने आप से, दर्शन नहीं किया है, उसके लिए ये समयसार की रचना हो गई है। अपने शुद्धात्मा को दिखाने के लिए समयसार की रचना हो गई है।

यह समयसार अभी भारत का ये भगवान है। अद्वितीय है यह। ऐसे कुंदकुंद भगवान की यह देन अपने पर बहुत करुणा हो गई। कोई तो देह को आत्मा मानता था, कोई कर्म को आत्मा मानता था, कोई राग को आत्मा मानता था, कोई शास्त्रज्ञान, इंद्रियज्ञान, भावेन्द्रिय को आत्मा मानता था। मगर उसमें कोई भी जगह पर शुद्धात्मा का लक्षण नहीं है। संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय में भी शुद्धात्मा का लक्षण नहीं है। शुद्ध तो है, मगर वो अनित्य शुद्ध है, सापेक्ष शुद्ध है, नया प्रगटता है। संवर, निर्जरा, मोक्ष नई पर्याय प्रगट होती है। मगर ये शुद्धात्मा तो नित्य शुद्ध है, निरपेक्ष शुद्ध है। मोक्ष की पर्याय प्रगट हो तो ये आत्मा शुद्ध होता है, ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन प्रगट होता है तो ये आत्मा शुद्ध है, ऐसा नहीं है। वो तो अनादि-अनंत शुद्ध है। स्वयं सिद्ध है। शुद्ध, निरपेक्ष शुद्ध है।

ऐसे शुद्धात्मा को बताने वाले यह जिनवाणी, द्रव्यानुयोग, द्रव्यानुयोग में भी उत्कृष्ट समयसार, नियमसार शास्त्र जो कुंदकुंद भगवान ने लिखा, जिनका नाम तीसरा है। आहाहा! परंपरा चलती है,

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी ।
मंगलं कुंदकुंदार्यो, जैन धर्मोऽस्तु मंगलम् ॥१॥

शुद्धात्मा को बतानेवाला ये शास्त्र है।

तो जब जैनकुल में जन्मता है जीव, तब उसके पास णमोकारमंत्र तो जन्म से ही आता है। णमो अरिहंताणं आदि। मगर जब ज्ञानी मिलता है कोई, तब एक दूसरा मंत्र देते हैं उसको कि, ये आत्मा है, वो ज्ञाता है और कर्ता नहीं है। आहाहा! ये स्वभाव से ही ज्ञाता है। ज्ञाता होता नहीं है, ज्ञाता है, तो फिर ज्ञाता भी हो जाता है।

क्या कहा? अनादि-अनंत ये स्वभाव से ही आत्मा ज्ञाता है। स्वभाव से ही ज्ञायक हूँ। ज्ञायक कहो कि ज्ञाता कहो। सर्वज्ञ भगवान की दिव्यध्वनि में आया कि सब आत्मा ज्ञाता हैं। आहाहा! कोई आत्मा कर्ता है ही नहीं। आहाहा! जो कर्ता मानता है, वो अज्ञानी हो जाता है। तो भी पर्याय में एक समय के लिए विशेष में अज्ञान प्रगट होता है। सामान्य आत्मा तो ज्ञाता ही रहता है, सामान्य ज्ञाता। स्वभाव (को) छोड़कर वो ज्ञाता (कभी) कर्ता नहीं होता है। क्या कहा?

आत्मा एक है, उसका पड़खा दो। एक सामान्य और एक विशेष। सामान्य स्वभाव त्रिकाल, ज्ञानानंद परमात्मा अंदर विराजमान है, वो तो ज्ञाता ही है। और उसके विशेष के अंदर उपयोग प्रगट होता है, वो भी ज्ञाता है। उसमें ज्ञान प्रगट होता है। पर्याय में ज्ञान प्रगट होता है। विशेष अपेक्षा से भी, सचमुच तो ज्ञाता ही है। तो भी अनादिकाल से अपने स्वभाव को भूलकर जो पराश्रित राग आदि परिणाम प्रगट होता है, उसका प्रतिभास स्वच्छ ज्ञान में आता है, क्योंकि स्वपरप्रकाशक ज्ञान की पर्याय का स्वतः स्वभाव है, सामर्थ्य है। सामर्थ्य और स्वभाव; सामर्थ्य प्रमाणज्ञान का विषय है, स्वभाव शुद्धनय का विषय है। आहाहा!

तो स्व-पर का प्रतिभास तो होता है ज्ञान की पर्याय में, अज्ञानी जीव को भी। अज्ञानी जीव की पर्याय में भी स्व-पर का प्रतिभास तो होता है। मगर राग का प्रतिभास जिस समय होता है, उस समय मैं ज्ञानमय आत्मा हूँ, वो भूल जाता है। और मैं रागी हूँ, ऐसा मानता है, तो विशेष अपेक्षा से वो कर्ता बन जाता है। विशेष अपेक्षा से कर्ता बने तब भी, स्वभाव से तो अकर्ता रहता है। वो कोई अलौकिक जैन दर्शन की बात है।

पानी पर्याय से उष्ण होता है, तब जल, जल समझे? (गुजराती आए शब्द तो हिन्दी कर लेना) जल है ना, वो अपनी योग्यता (से), अग्नि से गर्म नहीं होता है। पानी और पानी का स्वभाव, वो गर्म पर्याय को करता नहीं है। एक समय की इसकी योग्यता जब होती है, जब होती है, आहाहा! स्वतंत्र होती है पर्याय। शीतल, पानी से भी उष्ण नहीं होता है और अग्नि से भी (नहीं होता है)। ये भूतार्थनय से नौ तत्त्व को जानने के लिए दृष्टांत है। आहाहा! अग्नि से पर्याय गर्म हो, तो-तो पर्याय पराधीन हो गई और शीतल स्वभाव से उष्ण हो, तो-तो किसी भी समय वो उष्णता टले ही नहीं। स्वभाव, नित्य स्वभाव हो जाये। मगर ऐसा है नहीं। हाँ! इतना है कि अपनी योग्यता से जब उष्ण होती है, तब उसमें निमित्त-कारण अग्नि है। तब भी निमित्त-कारण जल नहीं है। क्या कहा? जल गर्म पर्याय का उपादान-कारण भी नहीं और निमित्त-कारण भी नहीं। तो उपादान-कारण कौन? कि उष्ण पर्याय एक समय की हुई, इसका नाम क्षणिक-उपादान है। आहाहा! क्षणिक-उपादान जिस को बैठ जाये, उसकी द्रष्टि अकर्ता पर, ज्ञायक पर आ जायेगी। आहाहा!

परिणाम को नैमित्तिक से मत देखो, एक दफ़े उपादान से देखो। आहाहा! एक दफ़े तो उपादान से देखो कि यह जल की जो पर्याय गर्म होती है, उसमें अग्नि निमित्त भी नहीं है। क्या कहा? निमित्त सापेक्ष अभी मत देख, थोड़ी देर के लिए। वो व्यवहार अभी गौण कर दे। आहाहा! अभी तो उसकी स्वतः परिणमन-शक्ति है। पर्याय की परिणमन-शक्ति से, ये पर्याय अपनी योग्यता से होती है। इसमें आता है होने योग्य, परिणाम होने योग्य होता है। नहीं होने योग्य भी नहीं हो और उसका कोई कर्ता बन जाये, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! तो एक समय की जल की पर्याय गर्म हुई, वो क्षणिक-उपादान से, योग्यता से होती है। ये उपादान से, क्षणिक-उपादान से देखो, तो कर्ताबुद्धि छूट जायेगी और बाद में उसके निमित्त का ज्ञान कराने के लिए, ये अग्नि उसमें निमित्त है (ऐसा बताया)। निमित्त से देखो तो नैमित्तिक है और उसको सत् पर्याय से देखो तो क्षणिक-उपादान है। आहाहा! क्षणिक-उपादान है, तो अग्नि (अर्थात्) पर की द्रष्टि हट गई। और नैमित्तिक पर्याय थी, उसके ऊपर की द्रष्टि

हट गई। और क्षणिक-उपादान (से) देखो, आहाहा! तो कोई करनेवाला दिखता नहीं है। आहाहा!

सर्वज्ञ भगवान की वाणी में आया है। आहाहा! अभी धोधमार वाणी चलती है, बीस विहरमान तीर्थंकर विराजमान हैं, परमात्मा सर्वज्ञ देवाधिदेव विराजमान हैं। सीमंधर भगवान अपने से बहुत नज़दीक है। अपने से बहुत, इस क्षेत्र से नज़दीक है। समझे? तो प्रतिज्ञा लेते समय, उनकी भी प्रतिज्ञा नमन करके लेते हैं। तो ये सीमंधर भगवान की वाणी में आया कि मैं भी ज्ञाता और तुम भी ज्ञाता। अरे! अरिहंत के साथ मिला दिया? मिला नहीं दिया, वस्तु की स्थिति है। कह दिया, जैसा ज्ञान में आया ऐसा वाणी में (आ जाता है कि) मैं भी ज्ञाता और तू भी ज्ञाता। स्वभाव से ज्ञाता है। त्रिकाल ज्ञाता है। आहाहा! उसको जो भूल गया था, ज्ञानी का जन्म हुआ, भैया! तू राग-द्वेष का करनेवाला नहीं है। तेरा स्वभाव तो जानना-देखना है! ज्ञाता स्वभाव है। तो सामान्य पड़खा बताया ज्ञानी ने, तो उसकी नज़र वहाँ ज्ञाता पर आती है। त्रिकाल ज्ञाता। मैं ज्ञाता हूँ। मैं ज्ञाता हूँ, तो परिणाम में जो कर्तृत्वबुद्धि (थी वो) छूट गई और अज्ञान का व्यय होकर विशेष अपेक्षा से भी ज्ञाता हो जाता है। ज्ञाता है और ज्ञाता होता है। ज्ञाता है और ज्ञाता होता है। समय-समय पर ऐसा चलता है। अनुभव के बाद, ज्ञाता। अनुभव के बाद, सामान्य स्वभाव तो ज्ञाता जिसकी द्रष्टि में आया, वो विशेष अपेक्षा वो जाननरूप परिणमता है। कर्ताबुद्धि छूट जाती है।

ऐसी अलौकिक गाथा १३ नंबर की है। ११वीं गाथा में तो भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, वो तो कह दिया। मगर एक बात थोड़ी उसकी पुष्टि के लिए है। ११वीं गाथा में शुद्धात्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। इधर नवतत्त्व के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा कहने का आशय नहीं है। आहाहा! मगर एक शुद्धात्मा तो स्व है और नवतत्त्व पर है। क्या कहा? नवतत्त्व परभाव हैं, परद्रव्य हैं, हेय हैं, ऐसा सर्वज्ञ भगवान की वाणी में आया है। आहाहा!

तो स्व-पर का यथार्थ श्रद्धान, टोडरमलजी साहब ने क्या कहा? अकेला स्व का श्रद्धान नहीं लिया, स्व-पर का (यथार्थ लिया)। स्व का तो यथार्थ श्रद्धान और पर का व्यवहार से, नय के विषय से, ऐसा नहीं है। भूतार्थनय से तू द्रव्य को भी देख और भूतार्थनय से परिणाम को भी देख। आहाहा! तो स्व-पर का यथार्थ श्रद्धान, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। इसका क्या अर्थ है? कि ये भगवान आत्मा तो ज्ञाता है। ज्ञाता होने से परिणाम का करनेवाला नहीं है और परिणाम होता तो है। अन्यमति जो कहते हैं कि सर्वथा अपरिणामी है, ऐसा नहीं है। ऐसा नहीं है। कथंचित् अपरिणामी और कथंचित् परिणामी। भेद से परिणाम उत्पन्न होता है।

तो स्व-पर का यथार्थ श्रद्धान। क्या कहा? स्व और पर। पर में नवतत्त्व, पर में? (नवतत्त्व)। पर ये पर है, स्व नहीं है। मगर पर भी पर से स्वयं सिद्ध सत् है, मेरे से नहीं है। मेरे से नहीं है। पुण्य-पाप का उत्पादक मैं नहीं हूँ। आहाहा! मिथ्यात्व का उत्पादक आत्मा नहीं है। जहाँ तक मिथ्यात्व का उत्पादक मैं हूँ (ऐसा मानेगा), तहाँ तक मिथ्यात्व जिंदा रहेगा। आहाहा! अरे! मैं तो ज्ञाता हूँ, आहाहा! मैं मोक्ष-पर्याय का उत्पादक नहीं हूँ। उत्पन्न करनेवाला नहीं हूँ। मैं तो जाननेवाला हूँ। सामान्य को भी जानूँ और विशेष को भी जानूँ। सामान्य को जानूँ और विशेष को करूँ? (नहीं) डॉक्टर साहब! ऐसा रखो, सामान्य को तो जानूँ, और विशेष-पर्याय को करूँ। अच्छा! पुण्य-पाप करूँ तो-तो संसार हो

जायेगा। पुण्य-पाप नहीं करूँ मैं। धर्म का परिणाम, संवर, निर्जरा, मोक्ष का परिणाम, वो तो करूँ कि नहीं? आहाहा! करने की बात भैया नहीं है। तेरी नज़र में ज्ञान नहीं आता है, ज्ञाता नहीं आता है। जब ज्ञाता नज़र में आ जायेगा, आहाहा! तब विशेष का भी वो ज्ञाता रहता है। कर्ता होता नहीं है। और कभी कोई जगह ये आए संवर, निर्जरा, मोक्ष का कर्ता आत्मा है, केवल उपचार से किया जाता है, कहा जाता है। उपचार का कथन है, अनुपचार का कथन नहीं है। अनुपचार से तो अकर्ता रहता है। मगर जो परिणमता है, तो कर्ता कहा जाता है। तो भी कर्ताबुद्धि नहीं होती है, ज्ञानी को। कर्ताबुद्धि अलग है और परिणमता है, तो कर्ता कहा जाता है व्यवहार से, वो अलग बात है। वो भी जब श्रेणी का काल आता है, शुद्धोपयोग का, तब उपचार से भी कर्ता खटकता है, संतों को। आहाहा!

ऐसे नियमसार में आया था मगर समय नहीं था, तो वहाँ खुलासा नहीं हुआ। आया था ना? नियमसार की ७७ गाथा से ८१ गाथा है। परमार्थ प्रतिक्रमण, सोनगढ़ का संत, सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना को मानते हैं कि नहीं? कि हाँ! मानता है। भाई! आहाहा! तू (जैसा) मानता है, ऐसा नहीं मानते हैं। आहाहा! तू जैसा मानता है प्रतिक्रमण का स्वरूप, ऐसा नहीं है। कोई अलग प्रकार का है। तो वहाँ आचार्य भगवान ने फ़रमाया कि मैं १४ गुणस्थान, मार्गणास्थान का कर्ता नहीं, कारयिता नहीं, अनुमोदक नहीं और कारण भी नहीं। चार प्रकार से कहा। तो विचार आता है कि कर्ताबुद्धि तो चौथे गुणस्थान में छूट गई। फिर छठवें-सातवें गुणस्थान पर, ऐसे समर्थ मुनिराज, कुंदकुंद जैसे मुनिराज फ़रमाते हैं कि, जो स्वयं प्रगट होता है, उसका में कर्ता (नहीं हूँ)। आहाहा! कर्ताबुद्धि तो छूट गई, मगर उपचार से जो कर्ता था, आया था कि उपचार से कर्ता है, वो कर्ता की बात खटक गई। तो उपचार से भी आत्मा कर्ता (नहीं है), व्यवहार से भी कर्ता (नहीं है)। निश्चय से तो कर्ता नहीं है, मगर व्यवहार से भी कर्ता (नहीं है)। आहाहा!

एक नयचक्र है, माइल्लधवल का नयचक्र। उसमें एक श्लोक बढ़िया आया है कि जो जीव ऐसा कहते हैं कि मैं परिणाम को व्यवहार से करता हूँ, ऐसे कहते तो हैं, मगर मानते हैं कि निश्चय से मैं कर्ता हूँ। राग का कर्ता व्यवहार से, वीतरागभाव का कर्ता भी व्यवहार से, ऐसा बोलते तो हैं, मगर मानते हैं कि मैं निश्चय से उसका कर्ता हूँ, ऐसा श्रद्धा का दोष बना रहता है। व्यवहार के पक्षवालों को, निश्चय तो यथार्थ अनुभव में ख्याल में तो आया नहीं है और व्यवहार की वाणी बोलता है, मगर श्रद्धा में तो कर्ताबुद्धि रहती ही है। आहाहा! कर्ताबुद्धि ऐसे छूटे नहीं, अनुभव के बिना। आहाहा! गले, गले मगर टले नहीं। भेदज्ञान से गले कि मैं ज्ञाता हूँ, कर्ता (नहीं)। परिणाम तो स्वयं होता है, अपने-आप। मैं करनेवाला (नहीं हूँ)। ऐसा भेदज्ञान का विचार, सो व्यवहार। भेदज्ञान का विचार (सो व्यवहार)। सोनगढ़ के संत ने कोई व्यवहार बताया कि नहीं? (कि) हाँ!

एक बार राजकोट में बड़ा डॉक्टर, वहाँ के प्रसिद्ध। मैं प्रवचन देता था बहुत साल पहले मंदिर में। तो उसने कहा कि भाई साहब! आपकी निश्चय की बात तो बराबर है, निश्चय की बात तो (बराबर है)। मगर थोड़ा व्यवहार साथ में जो आप बताओ, तो सोने में सुगंध मिल जाये। अच्छा? बहुत अच्छी बात है आपकी। कल से मैं व्यवहार की बात भी बताऊँगा। उसको तो ऐसा ख्याल आया कि वो शुभभाव करने की कल से बात, भाई कहेंगे। ये वीतराग की गादी पर बैठकर राग का कर्ता

कहनेवाला, वो गादी पर बैठने लायक नहीं है। तो दूसरे दिन मैंने कहा कि भाईसाहब! कल आपने कहा था ना कि व्यवहार की बात, तो मैं कहता हूँ आज कि, राग से आत्मा जुदा है, पुण्य-पाप के परिणाम, आस्रव से आत्मा भिन्न है, ऐसा बारबार विचार करना, उसका नाम व्यवहार है। ठंडा हो गया। वो तो माना था (कुछ) और निकला (कुछ)। आहाहा!

और शुरू-शुरू की बात है, शुरू-शुरू की बात। राजकोट के अंदर। वो भी बड़ा प्रसिद्ध था, व्यक्ति। नाम नहीं लेता हूँ। उसने कहा कि भैया! थोड़ा आप शुभभाव आत्मा कर्ता है, ऐसा व्यवहार तो आप स्थापित करो। मैंने कहा कि कल से दूसरे को बिठा देना। मैं वीतराग की गादी पर बैठकर राग का कर्ता, मैं बोलनेवाला नहीं हूँ। ऐसा है ही नहीं स्वरूप। अरे! ज्ञान का कर्ता वो भी खटकता है, तो राग के कर्ता की बात (तो बहुत दूर है) क्योंकि ज्ञान स्वयं उत्पन्न होता है। ज्ञान, आत्मज्ञान। हों! आत्मज्ञान स्वयं होता है। ऐसा १३ नंबर की गाथा में आया है। भूतार्थनय से तू जान कि संवर की पर्याय अपने आप स्वयं प्रगट होती है। स्वयं उछलती (उच्छलन्ती) है। निर्मल से निर्मल पर्याय स्वयं उछलती (उच्छलन्ती) है। १४१ गाथा है ना। मिठाभाई, क्या? १४१ कलश। आहाहा! माल भरा है शास्त्र में तो, भंडार है, खजाना है। कोहिनूर का हीरा अंदर है। ये चैतन्य हीरा। हों! जड़-हीरे की (बात नहीं)।

ये जो स्वयं प्रगट होता है, उसको मैं कर्ता हूँ, तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई और जो स्वयं उत्पन्न नहीं होता है, उसको भी कर सकता नहीं और जो स्वयं उत्पन्न होता है, वो तेरी कर्ता की अपेक्षा रखता नहीं है। आज फ़ज़ल (सुबह) में समाचार मिला की युगलजी साहब आ गए है। मैं खुश हुआ। उसमें, उसकी शक्ति ख्याल में आ गई है, इसलिए। प्रशंसा की बात नहीं है, ज्ञान की प्रशंसा है वो तो। व्यक्ति की प्रशंसा (नहीं है)। आहाहा! १४१।

मुमुक्षुः- २०४ गाथा।

उत्तरः- हें? हाँ! २०४ गाथा। बराबर! २०४ गाथा के बाद, मतिश्रुत वो अभिनंदता है आत्मा को। हाँ ये।

समस्त पदार्थोंके समूहरूप रसको पी लेनेकी अतिशयतासे मानों मत्त हो गई हो, ओहो! **ऐसी जिसकी यह निर्मलसे भी निर्मल [यस्य इमाः अच्छ-अच्छाः संवेदनव्यक्तयः] [अच्छ-अच्छाः],** हाँ! अच्छा-अच्छा! नहीं कहते हैं? बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है। ऐसा अच्छा इसमें आया। संस्कृत में। **जिसकी यह निर्मलसे भी निर्मल [यस्य इमाः अच्छ-अच्छाः संवेदनव्यक्तयः]** आत्मा पर लक्ष्य होता है तो निर्मल पर्याय स्वयं प्रगट होती है। आहाहा! परिणाम के लक्ष्य से परिणाम प्रगट नहीं होता है, द्रव्य के लक्ष्य से परिणाम प्रगट हो जाता है। द्रव्य को जानते-जानते पर्याय जाणित (जानने में आ) जाती है। **जिसकी यह निर्मलसे भी निर्मल [यस्य इमाः अच्छ-अच्छाः संवेदनव्यक्तयः] (-ज्ञानपर्याय, अनुभवमें आनेवाले ज्ञानके भेद**) मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान, वो ज्ञान की पर्याय के पाँच भेद हैं। **अपने आप उछलती है,** आहाहा!

[यद् स्वयम् उच्छलन्ति] स्वयं उच्छलंति। उसका आत्मा कर्ता नहीं है और कर्म के अभाव से भी नहीं होता है। पहले तू निरपेक्ष देख, परिणाम को, उपादान से देख। बाद में, निमित्त का ज्ञान हो, तो उसका नाम व्यवहार कहा जाता है। मगर निरपेक्ष की द्रष्टि बिना तेरे को व्यवहार निश्चय हो जायेगा।

आहाहा! कि ज्ञानावरण कर्म का जब अभाव होता है ना, तब केवलज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। तो क्या है? ज्ञानावरण कर्म का अभाव नहीं होता है? सुन, शांति से पहले सुन। अभी अभाव की बात आएगी। नंबर २ में आयेगा। नंबर १ में क्या है? केवलज्ञान कर्म के अभाव से होता है या स्वयं होता है?

मुमुक्षुः- स्वयं होता है।

उत्तरः- आहाहा! स्वयं होता है वो भूतार्थनय है। और वो कर्म के अभाव से हुआ, वो व्यवहारनय का ज्ञान है, व्यवहार। सापेक्ष व्यवहार है, निरपेक्ष निश्चय है। आहाहा!

कर्म के उदय से राग नहीं होता है। अरे! तो-तो स्वभाव हो जायेगा! हाँ! पर्याय का स्वभाव होता है, हमको इष्ट है। पर्याय का विभाव, स्वभाव है। अरे भैया! पर्याय को सत् तूने नहीं देखा है। पर्याय को पराधीन देखता है, तो द्रष्टि विपरीत हो जाती है। आहाहा!

देखो! [**यद् स्वयम् उच्छलन्ति]** स्वयं यानि अपने आप। कल बताया था ४३ नंबर की गाथा में अध्यवसान भी नैसर्गिक स्वयं उत्पन्न होता है। मिथ्यात्व के परिणाम का कर्ता भगवान आत्मा को मत देख, मत देख। है नहीं, है नहीं। आहाहा! शुद्धात्मा, अशुद्ध परिणाम को करे, मत देख, तेरी द्रष्टि बिगड़ जायेगी। मगर वो कर्ता तो बनेगा (नहीं)। क्या कहा? तेरी द्रष्टि बिगड़ जायेगी मगर शुद्धात्मा कभी अपने (को) निजभाव छोड़कर, अशुद्ध पर्याय का कर्ता तीनकाल में बननेवाला नहीं है। तेरी मति भ्रष्ट हो गई है। आहाहा! तूने आत्मा को देखा नहीं है। जाना नहीं, पहचाना नहीं। सचमुच रुचिपूर्वक सुना भी नहीं। जो रुचिपूर्वक ये भगवान आत्मा की बात सुनेगा, उसका निर्वाण हो जायेगा। **भाविनिर्वाणभाजनम्,** ऐसा बड़ा ज्योतिषी का ये ज्योतिष है। मुनिराज बड़े ज्योतिषी हैं। रुचिपूर्वक आत्मार्थी होकर शुद्धात्मा की बात एकबार सुन, तो तेरा काम हो जायेगा। आहाहा! मतार्थी के लिए अवकाश नहीं है और धनार्थी के लिए भी अवकाश नहीं है और मानार्थी के लिए भी अवकाश नहीं है, मगर आत्मार्थी के लिए अवकाश आ गया है। आत्मार्थी के लिए, अपने लिए समयसार लिखा है। इसमें मेरा नाम है ऊपर, पन्ने-पन्ने पर। आप पढ़ो तो आपका नाम, मैं पढ़ूँ तो मेरा नाम। अपने लिए धर्मपिता का पत्र आया है कि तू ज्ञाता है, कर्ता नहीं है। आहाहा!

देखो! **[यद् स्वयम् उच्छलन्ति] अपने आप उछलती है**, प्रगट होती है, पर्याय। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान अपने आप। **वह यह भगवान।** आहाहा! यह (मैं) भगवान, ये (पर) भगवान नहीं। आहाहा! मेरा भगवान मेरे पास है। मेरा भगवान मेरे पास है। बालक को कहते है ना (कि) भगवान का दर्शन करो तो धर्म होगा, ये बात सही है। वो बात सही है। भगवान का दर्शन करो बेटा, तो तेरे को धर्म होगा। मगर कौनसा भगवान? व्यवहार रह गया, निश्चय चला गया। आहाहा! व्यवहार तो रह गया, मगर निश्चय (चला गया)। निश्चयपूर्वक व्यवहार। निश्चय गया और अकेला व्यवहार रह गया। आहाहा!

भगवान अद्भुत निधिवाला। आहाहा! ऋद्धि नहीं लिखा है। क्या लिखा है? निधि लिखा है। निधि तो आत्मा का स्वभाव है। ऋद्धि तो पुण्य का परिणाम है। ऋद्धि में कुछ माल है नहीं। आहाहा! ये निधि है आत्मा की, **भगवान अद्भुत निधिवाला चैतन्यरत्नाकर** है। आहाहा! उसमें तो समुद्र है, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, इतने-इतने रत्न भरे हैं। आहाहा! खजाना है। खान है, ज्ञान की। ज्ञान की खान, सुख की

खान, वीर्य की खान। आहाहा! खत्म होता ही नहीं। केवलज्ञान सादि अनंतकाल (तक) उसमें से प्रगट हो, तो भी अधूरा होता नहीं। पूरा का पूरा रहता है। ऐसी अद्‌भुत निधि अंदर में है। **चैतन्यरत्नाकर**, **[अभिन्नरसः] ज्ञानपर्यायरूप तरंगोंके** उत्पाद-व्यय है ना? उत्पाद–व्यय का नाम तरंग है। जैसे समुद्र मैं मोजा (लहर) उठता है ना? ऐसे ध्रुव परमात्मा के ऊपर-ऊपर, अंदर नहीं उत्पन्न होता है। समुद्र के दल में मोजा (लहर) नहीं होता है, क्या कहा? समुद्र का दल है ना। उसमें, पाटनीजी! उठता है? नहीं, ऊपर-ऊपर उठता है। ऐसे भगवान आत्मा की जिसको द्रष्टि हो गई, ध्रुव की द्रष्टि हो गई, तो ध्रुव तो ऊपर-ऊपर, ध्रुव को प्रसिद्ध करनेवाला उत्पाद प्रगट होता है। पर को प्रसिद्ध करनेवाला उत्पाद उत्पन्न होता ही नहीं है। सुन तो सही! निश्चय की बात, तूने सुनी नहीं। आहाहा!

उत्पाद ध्रुव को प्रसिद्ध करता है। लक्षण लक्ष्य को प्रसिद्ध करता है। लक्षण अलक्ष्य को प्रसिद्ध नहीं करता है। अलक्ष्य को प्रसिद्ध करे, वो व्यवहार की बात है। अभी, पहले तो निश्चय की बात यानि सच्ची बात तो सुन ले। अनुभव के बाद व्यवहार क्या है, वो तेरे को बराबर समझ में आ जायेगा। पहले पैसा तो कमा ले दस लाख, बाद में ब्याज तो स्वयं (आ जाएगा)।

ऐसी एक बनाव बना। ऐसा बनाव बन गया कि एक बैंक के अंदर, एक भाई, सफेद, छप्पन इंच का सफेद कोट, सफेद एकदम, बगुले के पंख जैसा धोबी के वहाँ से सिलवाकर, सफेद टोपी, सेठ बनकर आया बैंक मैंनेजर के पास। साहब! मेरे को दस लाख रूपया आपकी बैंक में जमा कराना है। इसका ब्याज क्या है? कितने समय में वो पकेगा? वगैरह-वगैरह। तो (चपरासी) को बुलाया कि भाईसाहब, सेठ साहब के लिए थोड़ा ठंडा लाओ। तो ठंडा मँगवाया। समझे? बैठा, बातचीत किया। बीस मिनिट लगभग बातचीत हुई। बाद में मैंनेजर ने पूछा आपकी दस लाख की जो है, रकम, (वो) कहाँ से ट्रांसफर करनी है, मेरी बैंक में? भाई रूपये नहीं है, कमाना बाकी है। गेटआउट (get out), गेटआउट हमारा टाइम बिगाड़ता है। समझे? आहाहा! ऐसा धर्म तो सबको चाहिए। वो संवर, निर्जरा और मोक्ष तो ब्याज है, शुद्धात्मा तो पूंजी है। पूंजी पर द्रष्टि आए बिना, पूंजी का कबजा आए बिना, ब्याज नहीं मिलेगा। आहाहा! ये निधि है, निधि है ना। आहाहा!

अपने आप उछलती हैं, [सः एषः भगवान् अद्‌भुतनिधिः चैतन्यरत्नाकरः] वह यह भगवान अद्‌भुत निधिवाला चैतन्यरत्नाकर, [अभिन्नरसः] ज्ञानपर्यायरूप तरंगोंके साथ जिसका रस अभिन्न है ऐसा, क्या कहा? ये ज्ञान-दर्शन-चारित्राणी जो मोक्षमार्ग है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है, वो मोक्षमार्ग की पर्याय, शुद्धात्मा से कथंचित् अभिन्न है। कथंचित् (अभिन्न) है। द्रष्टि अपेक्षा से सर्वथा भिन्न, ज्ञान अपेक्षा से भिन्न-अभिन्न। क्या कहा? द्रष्टि अपेक्षा से तो (सर्वथा भिन्न)। वो पर्याय द्रव्य को छूती भी नहीं है, तो अभेद की बात तो (कहाँ रही)? हाँ! मगर स्याद्वाद, सम्यक्एकांतपूर्वक अनेकांत का जन्म हो जाता है। सम्यक्एकांतपूर्वक अनेकांत का ज्ञान हो जाता है। इधर लिखते हैं आचार्य महाराज कि वो पर्याय जो प्रगट हुई, वो आत्मा से अभिन्न है। कथंचित् अभिन्न है, सर्वथा अभिन्न नहीं है। सर्वथा अभिन्न हो तो पर्याय के व्यय से द्रव्य का नाश हो जायेगा, मगर ऐसा होता (नहीं है)। और कथंचित् अभिन्न बिना आनंद आता भी नहीं है। क्या कहा? कथंचित्, सर्वथा भिन्न, सर्वथा भिन्न, दूर रखो, दूर रखो, दूर रखो। तेरी द्रष्टि गलत है। समझे? अरे! द्रष्टि का विषय मैं कहता हूँ। मगर द्रष्टि के

विषय के साथ ध्येयपूर्वक ज्ञेय होता है, वो ख्याल है? तो वो ख्याल नहीं है। कथंचित् अभिन्न होती है। आनंदमूर्ति को पर्याय स्पर्श कर जाती है, तो उसमें आनंद आ जाता है। स्पर्श होते भी अस्पर्शी रहती है। आहाहा! स्पर्श होते भी, वो पर्याय तो (अस्पर्शी ही है)।

राजकोट में थोड़ी बात हुई। मैंने कहा संध्या...उसका भाव था यात्रा के लिए तो मैंने यात्रा का तो हाँ बोला। हमारे भिंड में ये शिविर करनी है, मैंने कहा कि (मैं तो) सूक्ष्म बात (कहूँगा)। भाई जितनी सूक्ष्म हो उसे बोल देना वहाँ। समझे? क्योंकि सब भगवान आत्मा हैं ना! कान पर तो पड़े कि यह बात क्या है? तो कान पर पड़े तो विचार करे, विचार करके निर्णय करे, निर्णय के बाद अनुभव का प्रयत्न करे, तो अनुभव हो सकता है। आहाहा! तिर्यंच को अनुभव होता है। तो ये तो सब भगवान बैठे हैं, स्त्री-पुरुष नहीं है कोई। देह को मत देख, कर्म को मत देख, राग को मत देख, इंद्रियज्ञान को मत देख, एक समय की पर्याय को मत देख। उसको जानने की चक्षु बंद कर दे। आहाहा! करने का तो है ही नहीं स्वभाव में, मगर व्यवहारनय से जो जानता था, वो निश्चय बन गया। अभी उसको बंद कर दे, तो निश्चय की आँख खुल जायेगी। आहाहा! आत्मदर्शन होगा तेरे को। ये सब गुरुदेव ने बताया है। बहुत साहित्य बाहर आ गया है।

मुमुक्षुः- साहब! सूक्ष्म सुनने के लिए ही सब आए हैं।

उत्तरः- ऐसी, आत्मा ही सूक्ष्म है और अभी तो गुरुदेव की गैरहाजिरी है। ४५ - ४५ साल उन्होंने दिया। तो अभी तो सूक्ष्म ही कहना चाहिए ना। आहाहा! अभी तो ऐसी ध्वनी कान पर आती है, मेरे कान पर। आहाहा! कि भाई साहब! स्थूल कहने वाले बहुत हैं, मगर हमको तृप्ति नहीं होती। आहाहा! मैंने कहा, आप उपादान (रूप) तैयार हो जाओ, आपके उपादान से तैयार हो जाओ, तो सूक्ष्मद्रष्टि में शुद्धात्मा आ जायेगा। बस! निमित्त की राह मत देखो। अपना काम कर लो। हाथ में (प्रवचन रत्नाकर) ११ भाग निकाल चुके हैं, गुरुदेव के। जो कोई प्रश्न उठे तो पूछ लो और अच्छा कोई लगे, तो उसके पास चर्चा करो। आहाहा! सब बात का खुलासा गुरुदेव ने कर दिया है। कोई (बात) बाकी नहीं है।

ये आनंद की पर्याय सर्वथा भिन्न मानने पर सर्वथा भिन्न जो जानेगा, तो आनंद नहीं आयेगा। द्रष्टि अपेक्षा से सर्वथा भिन्न और ज्ञान अपेक्षा से कथंचित् अभिन्न। ज्ञान अपेक्षा से पर्याय स्पर्श कर जाती है, तो आनंदमूर्ति को स्पर्श करती है, तो आनंद आता है। मगर स्पर्श करने पर, वो तो स्वभाव से अस्पर्शी ही रहती है क्योंकि उसका व्यय हो जाता है।

भगवान अद्‌भुत निधिवाला चैतन्यरत्नाकर, [अभिन्नरसः] ज्ञानपर्यायरूप तरंगोंके साथ जिसका रस अभिन्न है ऐसा, अभिन्न का है पाठ। ज्ञान अपेक्षा से कथंचित् निश्चय मोक्षमार्ग अभिन्न है। अरे! निश्चय मोक्षमार्ग आत्मा ही है। पर्याय नहीं है। भेद से पर्याय है, अभेद से तो आत्मा है। अरे! कभी कहें पर्याय परद्रव्य, कभी कहें कि पर्याय आत्मा, तो क्या समझना? कि जैसा है वैसा समझना।

आत्मसिद्धि

ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे, तहाँ समजवु तेह ।
त्यां त्यां ते ते आचरे, आत्मार्थी जन एह ।।

गुजराती आ गया इसका हिन्दी कर लेना सब। कर लेगा बस।

ज्ञानपर्यायरूप तरंगोंके साथ जिसका रस अभिन्न है ऐसा, [एकः अपि अनेकीभवन्] एक

होने पर भी, देखो! एक-एक श्लोक में पूरा भाव भरा है। एक श्लोक में। हो! **एक होने पर भी अनेक होता हुआ,** क्या कहा? एक, द्रव्यद्रष्टि से तो आत्मा एक ही है। एक ज्ञायकभाव है। एक होने पर भी अनेक होता हुआ, यानि पर्याय से देखो तो आत्मा साध्य भी होता है और साधक भी आत्मा है। आत्मा ही साधक और आत्मा ही साध्य है। **अनेक होता हुआ, [उत्कलिकाभिः] ज्ञानपर्यायरूप तरंगोंके द्वारा [वल्गति] दोलायमान होता है-उछलता है**। आहाहा! [**उच्छलन्ति**]।

ये पर्याय निरपेक्ष सत् है। वो अधिकार १३ नंबर की गाथा में कहा है। स्व-पर का यथार्थ श्रद्धान, यानि स्व तो निरपेक्ष है, ऐसा जान। मगर पर नवतत्त्व है, वो भी निरपेक्ष है। स्व से भी नहीं और पर से भी नहीं। इसका नाम स्व-पर का यथार्थ श्रद्धान। पर का यथार्थ श्रद्धान करने से कर्ताबुद्धि छूट जाती है। पर का यथार्थ श्रद्धान करने से कर्तृत्वबुद्धि छूट जाती है। स्वयं पर्याय प्रगट होती है उसको मैं क्या करूँ? नहीं है, उसको क्या मैं करूँ? तो ये स्व के साथ नवतत्त्व का यथार्थ श्रद्धान यानि स्व-पर का यथार्थ श्रद्धान दोनों ही निरपेक्ष, दोनों ही (निरपेक्ष)। आहाहा! द्रव्य से पर्याय नहीं और पर्याय से द्रव्य नहीं। आहाहा! दोनों सत् भिन्न-भिन्न हैं। प्रमाण से एक सत् होने पर भी नय-विविक्षा से दो सत् भिन्न हैं। आहाहा!

ऐसे स्व-पर का यथार्थ श्रद्धान, उसका नाम सम्यग्दर्शन। यानि नवतत्त्व का श्रद्धान, जिसको आत्मा का श्रद्धान होता है, उसकी पर्याय में कर्तृत्वबुद्धि छूट जाती है। तो पर्याय कर्ता का कर्म नहीं बनता है, ज्ञान का ज्ञेय बन जाता है। क्या कहा? ऐसे प्रवचनसार में ज्ञान, ज्ञातृतत्त्व और ज्ञेयतत्त्व का, दो का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। यानि नवतत्त्व, कर्ता का कर्म मत देख, ज्ञान का ज्ञेय देख। आहाहा! भाई! कर्ता का कर्म, ओहो! मत देख। क्योंकि तेरे करने से नहीं होती है। तू कर्ता हो तो पर्याय होती है, ऐसा नहीं है। मैं अकर्ता हूँ और पर्याय तो प्रगट होती है। तो ज्ञान का ज्ञेय है, कर्ता का कर्म नहीं है। ये बात नई आयी, आज नई आयी। वो तो जानती है ना सब। आहाहा! भाईसाहब! कैसे? बराबर है? आहाहा! दुबारा।

प्रेमचंदजी बोले हमारे वहाँ। ये इधर बैठे हैं। ओहोहो! खपी है वो। भाईसाहब! दुबारा कहो, ऐसा। कि जो परिणाम प्रगट होता है, वो कर्ता का कर्म मत देख। जो कर्म देखोगे तुम, तो पर्याय सत् नहीं रहती है। पर्याय, पर्याय पराधीन हो गई। दो दोष आयेगा-एक आत्मा अकर्ता को कर्ता माना तो त्रिकाल सत् का नाश हो गया, तेरी द्रष्टि में से। तेरी द्रष्टि में रहा नहीं अकर्ता और पर्याय मेरा कर्म है, तो पर्याय स्वयं होती है, वो पर्याय भी पराधीन हो गई, तेरे आधीन हो गई। पर्याय सत् नहीं रही। आहाहा! निरपेक्ष न रही, तो द्रष्टि विपरीत हो गई।

तो अभी क्या करना? पर्याय तो होती है। कर्ता का कर्म नहीं उड़ाया तो, है क्या? कि आत्मा, आत्मा को जानते-जानते परिणाम को जानता है, उसका नाम ज्ञातृतत्त्व और ज्ञेयतत्त्व। दोनों का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। प्रवचनसार का पाठ है। बहुत बढ़िया! ये पुराना हैं हमारे। ये परिचित बहुत पुराने, सोनगढ़ में। आहाहा! गुरुदेव उनको कभी-कभी बीच में बोलें, तो बोलें "सेठ ऐसा है"। गुरुदेव उनको सेठ कहकर (बुलाते थे)। प्रेम था उसको, उनके ऊपर, गुरुदेव का। आहाहा!

तो क्या कर्ता नहीं है परिणाम का? कि नहीं! क्योंकि परिणाम स्वयं उत्पन्न होता है। स्वयं उत्पन्न

होता है, इसको कोई करनेवाला जगत में नहीं है। कोई दूसरा भगवान भी करनेवाला नहीं है और ये (निज) भगवान भी करनेवाला नहीं है। हाँ! तो कर्म तो कहाँ से करे उसको? कर्म तो (कहाँ से करे)? जो सर्वथा भिन्न है, वो कहाँ करे? कथंचित् अभिन्न है, वो भी नहीं करता है।

मुमुक्षुः- जबरदस्त न्याय!

उत्तरः- जो सर्वथा भिन्न है, वो तो कहाँ से करे? जो कथंचित् भिन्न है, आत्मा के साथ परिणाम का, वो भी परिणाम का करनेवाला नहीं है। तो परिणाम का करनेवाला नहीं है, तो क्या है? कि आत्मा को जानते-जानते, ज्ञायक को जानते-जानते, ये पर्याय ज्ञेय हो, उसको जान लेता है। आहाहा!

मुमुक्षुः- उसका नाम "भूयत्थम् अभिगता"?

उत्तरः- हाँ! उसका नाम "भूयत्थम् अभिगता" है।

दूसरा, एक मोक्षमार्ग प्रकाशक का आधार लेकर कहा, एक प्रवचनसार का आधार लेकर कहा। अभी तीसरा आधार बताता हूँ कि पुरुषार्थसिद्धि उपाय है, अमृतचंद्राचार्य भगवान ने लिखा है। चरणानुयोग का शास्त्र है। उसकी टीका टोडरमलजी साहब ने (की)। ज्ञानी हो गए टोडरमल साहब, ज्ञानी धर्मात्मा हो गए। आहाहा! उन्होंने टीका की। तो पुरुषार्थसिद्धि उपाय में आचार्य भगवान फ़रमाते हैं कि विपरीत अभिनिवेश रहित साततत्त्व का श्रद्धान, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। क्या कहा? विपरीत अभिनिवेश रहित, विपरीत अभिप्राय रहित, साततत्त्व का श्रद्धान, (उसका नाम) सम्यग्दर्शन है।

वहाँ ऐसा नहीं लिखा, एक आत्मा का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। है तो आत्मा का श्रद्धान सम्यग्दर्शन, मगर उसके साथ-साथ जिसको श्रद्धा प्रगट होती है, उसकी कर्तृत्वबुद्धि छूट जाती है, ज्ञान का ज्ञेय बन जाता है, तो उसका यथार्थ श्रद्धान (का) नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा!

आत्मा ज्ञाता है, आत्मा को कर्ता मत देख। सारे दिन में दस बार, टेन टाइम्स, डॉक्टर साहब! दस बार, "मैं ज्ञाता हूँ और कर्ता नहीं हूँ।" दस बार। हों! और बाद में दस बार ऐसा बोलना कि ज्ञाता ही हूँ। ज्ञाता ही हूँ। वो "और" निकाल देना। ज्ञाता हूँ और कर्ता नहीं हूँ, वो निकाल देना। केवल ज्ञाता ही हूँ। ज्ञाता ही हूँ। ज्ञाता हूँ (ऐसा) नहीं। ज्ञाता ही हूँ। समझे? 'ही' में सब आ गया। ज्ञाता ही हूँ, इसमें कर्ता नहीं हूँ, (ऐसा) आ गया, ही में, **एव।** आहाहा! 'ज्ञाता ज छूँ' हमारी गुजराती में और हिन्दी में 'ज्ञाता ही हूँ'। आहाहा!

बाद में किसका ज्ञाता? वो प्रश्न बड़ा आता है। वो प्रश्न आता है कि नहीं? जिसका ज्ञान है, उसका ज्ञाता हूँ। इसका ज्ञान नहीं है, ज्ञान ज्ञेय का नहीं है, ज्ञान ज्ञेय से नहीं होता है। ज्ञेय से भी ज्ञान नहीं होता है और ज्ञेय का भी ज्ञान (नहीं होता है)। ज्ञेय का ज्ञान हो तो, ज्ञान ज्ञेयरूप हो जाये। ज्ञान जड़ हो जाये। वो तो तीनकाल में बननेवाला नहीं है। ज्ञेय से ज्ञान हो तो ज्ञान पराधीन होता है और ज्ञेय का ज्ञान हो, तो ज्ञान जड़ होगा। आहाहा! ये सब शास्त्र में है। हों! मेरी घर की बात नहीं है। सब शास्त्र में है, क्योंकि हमारा गला पकड़े न कोई विद्वान कि कहाँ से ये बोलते हैं? आहाहा!

ये सब सेटीका की गाथा है, बड़ी, उसमें है सब। वहाँ तो ऐसा लिखा है कि ज्ञेय को मैं जानता हूँ, ऐसा तू मानता है तो, जीवतत्त्व का नाश हो गया। तेरी द्रष्टि में जीव आया नहीं। किशोरीलालजी! वो किशोरीलालजी, ऐसा है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। आत्मज्ञान! आहाहा! ज्ञान, ज्ञान से होता है। सचमुच

तो आत्मा से ही आत्मा का ज्ञान नहीं होता है। ज्ञान, ज्ञान से होता है, तब उसका लक्ष्य आत्मा पर है, तो आत्मा से आत्मा का ज्ञान हुआ, ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

ऐसे, जैसे ये भूतार्थनय से नवतत्त्व जानने की बात है ना, ऐसा पंचाध्यायी में आया है कि अर्थविकल्पात्मक ज्ञान, स्व-पर को जाने, उसका नाम ज्ञान है। पंचाध्यायीकर्ता ने कलम चलाया। कुंदकुंद भगवान की गाथा लिखी, आधार तो कुंदकुंद भगवान का दिया कि अर्थविकल्पात्मक ज्ञानम्। स्व-पर को जाने उसका नाम ज्ञान है। वो प्रमाण का लक्षण है। तो उन्होंने लिखा कि ये ज्ञान की पर्याय असत् लक्षण है, सत् लक्षण नहीं है। ये क्या है? कि भूतार्थनय से तू जान ज्ञान की पर्याय को, तो सत् लक्षण होती है। पर्याय, पर्याय से है। आहाहा! स्व को जाने तो ज्ञान, पर को जाने तो ज्ञान, ऐसा भी सचमुच सूक्ष्म द्रष्टि से देखो। आहाहा! एक बार, द्रव्य को तो सूक्ष्म द्रष्टि से देखो, मगर परिणाम को सूक्ष्मद्रष्टि से देखने से कर्तृत्वबुद्धि छूट जाती है और द्रव्यद्रष्टि हो जाती है।

ज्ञान की पर्याय स्वपरप्रकाशक है। स्व-पर को जाने, वो लक्षण ज्ञान का है ही नहीं। तो क्या लक्षण है? उन्होंने बताया कि ज्ञान तो ज्ञान से है कि भूतार्थनय से ज्ञान को जान। अभूतार्थनय से ज्ञान को जाना? आहाहा! ये १३वीं गाथा तो कोई अपूर्व है। ऐसा लिखा है कि जो भूतार्थनय से नवतत्त्व को जानता है, नियम से सम्यग्दर्शन हो जाता है। यानि कर्तृत्वबुद्धि छूट जाती है, तो अकर्ता द्रष्टि में आ जाता है, तो भूतार्थनय से ज्ञान हो जाता है। मैं करनेवाला नहीं हूँ। कर्ता का कर्म नहीं है, ज्ञाता का ज्ञान ज्ञेय है, वो भी सचमुच तो व्यवहार है, क्या करें? कर्ता का कर्म नहीं है, ऐसा निषेध करने के लिए (कहा कि) कर्म नहीं है। कि कर्म नहीं है तो क्या है? कि ज्ञान का ज्ञेय है। वहाँ पूर्णविराम नहीं है। वो भी व्यवहार है। आहाहा! अद्‌भुत बात है! ये आत्मकथा चलती है। हें? धर्मकथा है। आहाहा! जिज्ञासा बहुत है। सारा पंडाल भर गया। आत्मा की बात है।

मुमुक्षुः- सब लालायित हैं साहब!

उत्तरः- ये पराधीन द्रष्टि अनंतकाल से, सुख वहाँ से आयेगा, सुख तो लक्ष्मी में से आयेगा और ज्ञान शास्त्र में से आयेगा। क्या कहा? ये पंडित बैठा है, 'ना' बोलता है। गलती है। अच्छा! तो पैसे (के) टिकने से सुख नहीं है? नहीं? अच्छा! वो तो नहीं हो, तो नहीं हो, मगर शास्त्र से ज्ञान होता है कि नहीं? कि नहीं होता है। ज्ञान तो आत्मा से होता है, वो भी अपेक्षित कथन है। ज्ञान तो ज्ञान से ही होता है, वो निरपेक्ष है। अभी पाँच मिनिट, सात मिनिट बाकी हैं। सब ऊपर से आया, अभी पाठ। प्रमाण से करते है।

ये जीवादि नवतत्त्व भूतार्थ नयसे जाने हुवे, यानि यथार्थ नय से, सत्यार्थनय से जाने हुए, **सम्यग्दर्शन ही हैं**। **एव!** यानि शुद्धात्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन और नवतत्त्व के आश्रय से सम्यग्दर्शन, ऐसी बात नहीं है। ख्याल रखना। आश्रयभूत आत्मा तो एक ही है। मगर जहाँ तक पर्याय सत् नहीं दिखेगी, तहाँ तक तेरी द्रष्टि द्रव्य पर आनेवाली नहीं है। कर्ताबुद्धि है, तहाँ तक अकर्ता द्रष्टि में आता नहीं है। इसलिए पर्याय सत्-अहेतुक है, तो द्रष्टि वहाँ से हट जाती है और अंदर में आ जाती है।

तो **सम्यग्दर्शन ही हैं (–यह नियम कहा);** कोष्ठक किया पंडितजी ने, उसका कोष्ठक कहाँ से आया? कि 'ही' में से आया। ये **(यह नियम कहा);** वह कोष्ठक है। जयपुर में जयचंद पंडित हो गए ना,

उन्होंने कोष्ठक किया। कोष्ठक कहाँ से आया, नियम? कि 'ही' अर्थात् ब्रेकेट (Bracket), अंग्रेजी में। काउंस कहा ना। हिन्दी में क्या काउंस को कहते हैं? ब्रेकेट। अच्छा! तो सम्यग्दर्शन ही है। जो पर्याय को सत् देखता है, जानता है, उसकी द्रष्टि (में) कर्तृत्वबुद्धि छूट जाती है और अकर्ता ऐसे ज्ञायक पर आ जाती है। अकर्ता ऐसा ज्ञायक है, कर्ता ऐसा ज्ञायक नहीं है। अकारक-अवेदक ऐसा ज्ञायकतत्त्व, जीवतत्त्व सामान्य है। आहाहा!

मगर आगे एक लाइन पूरी होने के बाद व्यवहार की बात बताई। **क्योंकि तीर्थकी (व्यवहार धर्मकी) प्रवृत्तिके लिये अभूतार्थ (व्यवहार) नयसे कहे जाते हैं ऐसे ये नवतत्त्व—जिनके लक्षण जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष हैं,** आहाहा! क्या कहा? **व्यवहार; क्योंकि तीर्थकी (व्यवहार धर्मकी) प्रवृत्तिके लिये,** तो कोई कहे कि पुण्य करना वो तीर्थ है? कि नहीं! बिल्कुल नहीं है। पुण्य करने की बात इधर (नहीं है)। आहाहा! पुण्य को करनेवाला आत्मा है ही नहीं। तेरी कर्ताबुद्धि है भैया! उसको जानना कहना, वो भी व्यवहार है। कर्ता मानता (है), तो दिल्ली बहुत दूर है। ऐसी कहावत है। आहाहा!

कर्ताबुद्धि तो दिल्ली बहुत दूर है मगर पुण्य पाप को मैं जाननेवाला हूँ। तो जाना कर पुण्य-पाप, पुण्य-पाप को, कभी आत्मा को जानेगा तू? जानने का अवकाश नहीं रहेगा। छोड़ दे वो बात। पुण्य-पाप का करनेवाला तो नहीं, मगर पुण्य-पाप परद्रव्य हैं, इसलिए मैं जाननेवाला भी (नहीं हूँ)। परद्रव्य को जानने से ज्ञान भी नहीं और सुख भी नहीं। पुण्य-पाप परद्रव्य है। इसको (पर चीज़ को) तो परद्रव्य सब कहते हैं, मगर भावलिंगी संत नित्य-आनंद का भोजन करनेवाले, मोक्ष की पर्याय को परद्रव्य कहते हैं। सुन तो सही ज़रा! आहाहा!

रुचिपूर्वक सुन तो सही। आहाहा! पर्याय है ना, तो जैसे परद्रव्य के लक्ष्य से रागी प्राणी को राग होता है, ऐसा भेद, भेद कोई भी भेद। भेद के लक्ष्य से रागी प्राणी को राग ही होता है। तो राग छुड़ाने के लिए, उसका अवलंबन छुड़ाने के लिए, ज्ञान का ज्ञेय बनता है, वो ज्ञेय छुड़ाने के लिए ज्ञायक को ज्ञेय बना ले। ये ज्ञेय, बड़ा ज्ञेय इधर है। वो तो नाशवान ज्ञेय है। अविनाशी को ज्ञेय बना ले, तेरा काम हो जायेगा।

अभी **(व्यवहार धर्मकी) प्रवृत्तिके लिये अभूतार्थ (व्यवहार) नयसे,** यानि क्या? जो नौ का भेद है, उसको जानना, वो व्यवहारधर्म है। क्या कहा? जो नौ का भेद (है उस) को जानना, ये पुण्य है, पाप है, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष है। ऐसे, ऐसे उसको जानना, उसका नाम व्यवहारधर्म है। आत्मा को जानना उसका नाम निश्चयधर्म है। आहाहा! करने की बात है नहीं, जानने की बात भी अस्थायी (टेम्पररी) है। ज़्यादा काल भेद को जानने से निर्विकल्पध्यान आता नहीं है।

थोड़े टाइम के लिए सविकल्पदशा आती है, तो ज्ञानी (को) व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। मगर, वहाँ रुकने की बात नहीं है। इधर ठहरता नहीं है उपयोग और उपयोग बाहर आ जाता है, तो कर्ता नहीं है, ज्ञाता है, ऐसा बताना है। मगर हमेशा के लिए वो ज्ञान का ज्ञेय नहीं है। ज्ञान का ज्ञेय तो एक ही है। आहाहा! परिणाम ज्ञान का ज्ञेय नहीं है। आहाहा! कर्ता-कर्म तो नहीं है, मगर ज्ञान का ज्ञेय भी कामचलाऊ, थोड़े टाइम के लिए उपयोग अंदर में नहीं जमें, उपयोग बाहर गया, तो वो जानता है।

वीतरागी पर्याय प्रगट होती है, वो भी जाना। राग भी थोड़ा है, मचक आती है। साधक को भी अस्थिरता का राग तो आता है, उसको जानता है। मगर फिर से वहाँ से हटकर, फिर से वहाँ से हटकर, अंदर आ जाता है। आहाहा! तो उसको जानना बंद हो गया। पहले जानना बंद किया तो सम्यग्दर्शन। बाद में बारबार जानने का बंद करता है, तो चारित्र आ जाता है।

आहाहा! भिंड भाग्यशाली है ऐसी १३ नंबर की गाथा, आहाहा! आई। रुचिवाला जीव तो होता है ना। गुरुदेव का परिचिय तो बहुत जीव को, मुमुक्षु को है। आहाहा! अरे! नया आए तो भी समझ आवे कि ज्ञाता हूँ और कर्ता नहीं हूँ। दस दफ़े बोलना, अकेले में (खानगी में)। किसी को बताने की ज़रूरत नहीं। दिखावा करना नहीं है।

मुमुक्षुः- सोनागिरी में डोलीवाले बोले। साहब!

उत्तरः- हाँ! सोनागिरी में डोलीवाला को मंत्र दिया, बहन ने। तो बोलने लगा कि मैं जाननेवाला हूँ, करनेवाला नहीं हूँ। बोलते-बोलते चले। तो उसने कहा कि थकान हुई नहीं हमको। थकान उतर गई हमारी क्योंकि उपयोग फिर गया ना। उपयोग वहाँ है तो दुःख है, उपयोग स्वरूप के चिंतवन में है, तो दुःख नहीं होता है। आहाहा! दुःख का अभाव तो आत्मा के आश्रय से होता है, मगर स्वरूप का स्मरण करने से दुःख की मात्रा कम हो जाती है। गलती है, दुःख गलता है, गलने के बाद टल जाता है। अंदर में घुस जावे तो टल जाता है। टाइम हो गया।

मुमक्षुः अहो! ज्ञानामृत बरसे रे, अहो परमामृत बरसे रे। ...